

दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

**सि.वा.(मू.प.) सं. 58/2008 में अंतर.आ. 3132/2008 (सि.प्र.सं. के आदेश 7
नि.11 के अंतर्गत)**

निर्णय की तिथि : 10.9.2008

निम्न मामले में :

मास्टर अभिषेक मेहरा एवं अन्य

..... वादीगण

द्वारा: श्री कीर्ति उप्पल, अधिवक्ता।

बनाम

डी.एल.एफ. कमर्शियल डेवलपर्स लिमिटेड

..... प्रतिवादी

द्वारा: श्री अजय गोयल और सुश्री मनदीप
कौर अधिवक्तागण।

कोरम

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री हिमा कोहली

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने
की अनुमति दी जा सकती है? हाँ
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नहीं? हाँ
3. क्या निर्णय डाइजेस्ट में प्रकाशित किया जाना चाहिए? हाँ

न्या. सुश्री हिमा कोहली (मौखिक)

1. वर्तमान आवेदन प्रतिवादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता (सि.प्र.सं.) के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत दायर किया गया है, जिसमें *अन्य बातों के साथ-साथ* वादपत्र को इस आधार पर अस्वीकार करने की प्रार्थना की गई है कि वाद विधि द्वारा वर्जित है।

2. प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि वादी द्वारा दायर वादपत्र के स्पष्ट परिशीलन से पता चलता है कि वर्तमान वाद की विषय वस्तु नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 13.10.2004 के आदेश द्वारा के अंतर्गत संदर्भित किया गया था। इस संबंध में, वह इस न्यायालय का ध्यान वादपत्र के पैरा 15 और 16 में वादीगण द्वारा किए गए प्रकथनों की ओर आकर्षित करता है, जिसमें उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पक्षकारगण के बीच विवादों की विषय वस्तु, जैसा कि वर्तमान वाद में उठाई गई है, विद्वान मध्यस्थ के समक्ष भी विचार की विषय वस्तु है। प्रतिवादी के अधिवक्ता ने बताया है कि चूँकि विद्वान मध्यस्थ को पक्षकारगण के संपूर्ण विवाद की जानकारी है, और मामला उसके समक्ष न्यायनिर्णयन हेतु लंबित है, इसलिए इस न्यायालय को वर्तमान वाद की सुनवाई करने से वर्जित कर दिया गया है। इस संबंध में, वह सि.प्र.सं. की धारा 9 और

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 5 के उपबंधों पर भरोसा करना चाहते हैं। अधिनियम की धारा 5 निम्नानुसार अनुबंधित करती है:

"5. न्यायिक मध्यक्षेप का विस्तार - तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई न्यायिक प्राधिकारी उस दशा के सिवाय मध्यक्षेप नहीं करेगा, जिसके लिए इस भाग में ऐसा उपबंध किया गया हो।

सि.प्र.सं. की धारा 9 निम्नानुसार परिकल्पित करती है:

"9. जब तक कि वर्जित न हो, न्यायालय सभी सिविल वादों का विचारण करेंगे - न्यायालयों को (इसमें अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए) उन वादों के सिवाय, जिनका उनके द्वारा संज्ञान अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित है, सिविल प्रकृति के सभी वादों के विचारण की अधिकारिता होगी।"

3. दूसरी ओर, वादीगण के अधिवक्ता वर्तमान आवेदन पर विवाद करते हैं और प्राख्यान देते हैं कि वादीगण द्वारा स्थापित वाद संधार्य नहीं है। वह प्रस्तुत करते हैं कि प्रतिवादी आज तक मूल व्यवसायिक संपत्ति विक्रेता अनुबंध को प्रस्तुत करने में विफल रहा है और उक्त अनुबंध की अनुपस्थिति में, कोई मध्यस्थता खंड लागू नहीं हो सकता है, और इसलिए विद्वान मध्यस्थ के पास इस मामले में कोई अधिकारिता नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि वर्तमान वाद वादीगण द्वारा

अत्यधिक सावधानी से संस्थापित किया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वादीगण के दावे कालवर्जित न हो सकें।

4. प्रत्युत्तर में, प्रतिवादी के अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान सि.वा.(मू.प.) सं. 734/2004 में पारित दिनांक 21.9.2004 और दिनांक 13.10.2004 के आदेशों, वादीगण द्वारा अधिनियम की धारा 12 और 16 के अंतर्गत दायर आवेदन पर विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित दिनांक 31.1.2006 के आदेश और मू.वि.या. सं. 431/2006 में पारित दिनांक 21.5.2007 के आदेश की ओर आकर्षित किया है। उन्होंने कहा कि उपरोक्त आदेशों को ध्यान में रखते हुए, मध्यस्थता खंड के अस्तित्व से संबंधित विवादक अब अनिर्णीत नहीं है, क्योंकि विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिनांक 31.1.2006 के आदेश के अंतर्गत इस पर विधिवत न्यायनिर्णयन किया जा चुका है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि विद्वान मध्यस्थ के इस स्पष्ट निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि पक्षकारगण के बीच एक माध्यस्थम् अनुबंध मौजूद है, वादीगण के पास उपलब्ध एकमात्र उपाय विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिए गए अंतिम अधिनिर्णय को चुनौती देना है, यदि वादीगण अभी भी व्यथित हैं। इस संबंध में, प्रतिवादी के अधिवक्ता ने एम.एस. कमर्शियल एवं अन्य बनाम कालीकट इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, (2004) 10 एस.एस.सी. 656 और एस.बी.पी. एंड कंपनी बनाम मैसर्स पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 450 के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर

भरोसा किया है। उन्होंने बी.पी.एल. लिमिटेड बनाम मॉर्गन सिक्योरिटीज एंड क्रेडिट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, 149(2008)डी.एल.टी. 610 के मामले में भी इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि यदि माध्यस्थम् अधिकरण का गठन पक्षकारगण के बीच अनुबंध के अनुसार, अधिनियम की धारा 11(6) का सहारा लिए बिना किया जाता है, तो उक्त अधिकरण के पास अधिनियम की धारा 16 द्वारा परिकल्पित सभी मामलों पर निर्णय करने की अधिकारिता होगी।

5. मैंने पक्षकारगण के अधिवक्तागण को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत आदेशों और दस्तावेजों का भी परिशीलन किया है। सबसे पहले, मामले के निर्विवाद तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है।

6. वादीगण ने सि.वा. (मू.प.) सं. 734/2004 के अंतर्गत विक्रय अनुबंध के विशिष्ट पालन की राहत के लिए इस न्यायालय में प्रतिवादी के विरुद्ध पहले वाद दायर किया था। प्रतिवादी ने उपस्थिति दर्ज की और अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत एक आवेदन अं.आ. सं. 4820/2004 दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की गई कि पक्षकारगण के बीच एक माध्यस्थम् अनुबंध मौजूद है, जिसके अंतर्गत वाद के दावों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जा सकता है। प्रतिवादी द्वारा न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के संबंध में एक आपत्ति भी उठाई गई थी। उपरोक्त आवेदन के लंबित रहने के दौरान, दिनांक

21.9.2004 को, वादीगण की ओर से प्रतिवादी को न्यायालय के समक्ष एक प्रस्ताव दिया गया कि प्रतिवादी द्वारा वादी के विरुद्ध दावा किए गए 34 लाख रुपये पर ब्याज के संबंध में मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाएगा। उपरोक्त प्रस्ताव को दिनांक 21.09.2004 के आदेश में विधिवत दर्ज किया गया था और प्रतिवादी के अधिवक्ता को निर्देश प्राप्त करने के लिए समय दिया गया था। वादीगण की ओर से एक बयान भी दर्ज किया गया था कि वादीगण को अनुबंध के अंतर्गत नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ नियुक्त किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। दिनांक 13.10.2004 को, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी के अधिवक्ता ने पक्षकारगण के बीच शेष विवादों को नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ को संदर्भित करने के लिए वादीगण की ओर से किए गए प्रस्ताव पर अपनी अनापत्ति दे दी, वाद और लंबित आवेदन का निपटान कर दिया गया, जबकि नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ को तीन सप्ताह के भीतर नियुक्त करने का निर्देश दिया गया और पक्षकारगण को अपने-अपने दावों और प्रतिदावों के लिए दिनांक 09.11.2004 को उनके समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, मध्यस्थ ने संदर्भानुसार मामले में प्रवेश किया और मामला न्यायनिर्णयन हेतु लंबित है।

7. वादीगण ने अधिनियम की धारा 12 और 16 के अंतर्गत विद्वान मध्यस्थ के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसका दिनांक 31.1.2006 के आदेश के अंतर्गत निपटान कर दिया गया। दो मुद्दे जो विद्वान मध्यस्थ द्वारा

विरचित किए गए थे और उपरोक्त आदेश द्वारा निर्णीत किए गए थे, उनमें एक विवादक यह भी शामिल था कि क्या वादीगण और प्रतिवादी के बीच कोई माध्यस्थम् अनुबंध मौजूद था। उपरोक्त विवादक को वादीगण के विरुद्ध यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया था कि वादीगण और प्रतिवादी के बीच एक अनुबंध था, जिसमें एक मध्यस्थता खंड निहित था और इसलिए, वादी की यह आपत्ति कि कोई मध्यस्थता खंड मौजूद नहीं था, अस्वीकार कर दी गई। उपरोक्त आदेश के प्रासंगिक पैरा यहाँ पुनः प्रस्तुत किए गए हैं;

"दोनों पक्षकारगण ने आवेदन पर विस्तार से बहस की है। मौखिक बहस और पक्षकारगण के आवेदन से दो मुद्दे सामने आए हैं:-

- (i) क्या दावेदारों और प्रतिवादी के बीच कोई माध्यस्थम् अनुबंध मौजूद है?
- (ii) क्या मध्यस्थ के पास माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 12 के अनुसार आवेदन पर सुनवाई करने की अधिकारिता है?

मुद्दा सं. 1

....

झ. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत एक आवेदन में मध्यस्थ को विवाद संदर्भित करने वाला माननीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.10.2004 का आदेश एक न्यायिक आदेश है और माननीय न्यायालय ने

अनुबंध के अनुसार नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ नियुक्त करने का निर्देश देने से पहले माध्यस्थम् अनुबंध के अस्तित्व पर निर्णय लिया है। मध्यस्थ को माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक आदेश पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है। माननीय न्यायालय ने पक्षकारगण को मध्यस्थता कार्यवाही में सभी आपतियाँ लेने की अनुमति दी है, सिवाय इसके कि कोई माध्यस्थम् अनुबंध नहीं है।

- ज. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पक्षकारगण के बीच कोई अनुबंध है। मेरे विचार में, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.10.2004 के न्यायिक आदेश और अधिनियम की धारा 7 के साथ अधिनियम की धारा 16 को ध्यान में रखते हुए दावेदारों का प्रस्तुतीकरण सही नहीं है। अधिनियम की धारा 16(1)(क) में प्रावधान है कि माध्यस्थम् अनुबंध संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र है। अधिनियम की धारा 7 में प्रावधान है कि माध्यस्थम् अनुबंध लिखित रूप में होगा। अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि दावेदारों ने उस अनुबंध पर हस्ताक्षर किए हैं जो प्रत्यर्थी द्वारा उन्हें दिया गया था और अनुबंध में माध्यस्थम् खंड शामिल है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 7 का पूर्ण अनुपालन हुआ है क्योंकि एक माध्यस्थम् अनुबंध (धारा 50) है जो लिखित रूप में है और दावेदारों ने अनुबंध पर हस्ताक्षर करके इसे स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार मेरा मानना है कि दावेदारों की यह आपति कि कोई माध्यस्थम् अनुबंध नहीं है, में गुणागुण का अभाव है।

इस प्रकार, विवादक सं. झ के संबंध में दावेदारों के विरुद्ध निर्णय किया गया।

8. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, वादीगण ने अधिनियम की धारा 12(3)(क) और धारा 13 के अंतर्गत एक याचिका मू.वि.या. सं. 431/2006 दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की गई कि पक्षकारगण के दावों पर निर्णय लेने के लिए एक स्वतंत्र/तटस्थ मध्यस्थ नियुक्त किया जाए। उक्त याचिका को दिनांक 21.5.2007 के आदेश के अंतर्गत खारिज कर दिया गया, जिसके अंतर्गत मामले की पृष्ठभूमि पर ध्यान देने के बाद, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि मध्यस्थ ने पहले ही अपनी अधिकारिता पर विनिर्णय सुना दिया है, इसलिए याचीगण (यहाँ वादीगण) अपनी सभी आपत्तियाँ उठाने के लिए स्वतंत्र होंगे, यदि वे उस अधिनिर्णय से संतुष्ट नहीं हैं जो अंततः मध्यस्थ द्वारा पारित किया जाएगा।

9. वर्तमान वाद वादीगण द्वारा 09.1.2008 को दायर किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी से ब्याज सहित 1,48,45,668/- रुपए की राशि की वसूली के लिए प्रार्थना की गई थी। प्रतिवादीगण द्वारा प्रतिवादीगण के विरुद्ध उठाए गए दावों का विवरण वादपत्र के पैरा 16 में पुनः प्रस्तुत किया गया है। उक्त पैरा की शुरुआत इस बात को स्वीकार करते हुए होती है कि वादीगण ने मध्यस्थ के समक्ष भी उक्त दावे दायर किए थे।

10. प्रतिवादी द्वारा सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत दायर वर्तमान आवेदन पर निर्णय लेने के प्रयोजन से, इस न्यायालय को केवल वादपत्र

में निहित कथनों की परीक्षा करने तक ही सीमित रहना चाहिए, और उससे आगे नहीं जाना चाहिए। वास्तव में, सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के उपबंधों के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के संबंध में, विधि सुस्थापित है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वाद हेतुक या वाद पत्र में विभिन्न पैराग्राफों का कोई पृथक्करण और विच्छेदन नहीं किया जा सकता है और अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण वादपत्र पर विचार किया जाना चाहिए, न कि उसमें किए गए किसी विशेष अभिवाक् पर। (संदर्भ: रूप लाल साथी बनाम नछत्तर सिंह गिल (1982) 3 एस.सी.सी. 487)। किसी वाक्य को छांटना और उसे अलग से संदर्भ से बाहर पढ़ना जायज़ नहीं है (संदर्भ: मैसर्स राफ्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम यानेश प्रॉपर्टी, (1998) 7 एस.सी.सी. 184) और पोपट एंड कोटेचा प्रॉपर्टी बनाम एस.बी.आई. स्टाफ एसोसिएशन (2005) 7 एस.सी.सी. 510)। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत आवेदन पर विचार करते समय, जिस प्रश्न पर निर्णय लिया जाना है वह यह है कि क्या वादपत्र में वास्तविक वादहेतुक निर्धारित किया गया है या कुछ भ्रामक कहा गया है (संदर्भ: आई.टी.सी लिमिटेड बनाम ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण, (1998) 2 एस.सी.सी. 70)।

11. वर्तमान मामले में, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वादीगण स्वयं वादपत्र में स्वीकार करते हैं कि विवाद, वर्तमान वाद की विषय-वस्तु मध्यस्थ अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित हैं, और इस तथ्य को भी ध्यान

में रखते हुए कि वादीगण ने स्वयं पक्षकारगण के बीच लंबित विवादों को मध्यस्थ के पास भेजने का प्रस्ताव रखा था, जिसे दिनांक 21.9.2004 के आदेश में विधिवत दर्ज किया गया था और उसके बाद दिनांक 13.10.2004 के आदेश के अनुसार पक्षकारगण को विद्वान मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था, यह न्यायालय वादीगण के अधिवक्ता के इस प्रतिविरोध की परीक्षा नहीं कर सकता कि पक्षकारगण को शासित करने वाला कोई माध्यस्थम् खंड मौजूद नहीं है और मध्यस्थ के समक्ष अभिनिर्धारित की जा रही पूरी कार्यवाही शून्य है। जैसा कि एस.बी.पी. एंड कंपनी (पूर्वोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है, माध्यस्थम् अधिकरण के पास अधिनियम की धारा 16 की उपधारा (1) के अंतर्गत 'अपनी अधिकारिता' के संबंध में निर्णय लेने की शक्ति और अधिकारिता है। जहाँ माध्यस्थम् अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया है कि उसके पास अधिकारिता है, वह माध्यस्थम् कार्यवाही जारी रखेगा और एक मध्यस्थ अधिनिर्णय देगा और व्यथित पक्षकार के लिए उपाय उपलब्ध कराएगा कि वह अधिनियम की धारा 34 या धारा 37 के अनुसार अधिनिर्णय को चुनौती दे सकेगा। एम.एस. कमर्शियल एवं अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने भी इसी तरह का रुख अपनाया था, जहाँ यह टिप्पणी की गई थी कि एक बार मध्यस्थ ने यह निर्णय ले लिया कि माध्यस्थम् अनुबंध है, तो वह मध्यस्थता कार्यवाही जारी रखने और मध्यस्थता अधिनिर्णय देने के लिए बाध्य था। इसलिए,

उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त निर्णयों में व्यथित पक्षकार के उपाय को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है। इसलिए, वर्तमान कार्यवाही में, वर्तमान आवेदन के उत्तर में वादीगण की ओर से उठाए गए उक्त मुद्दे पर निर्णय लेना इस न्यायालय के दायरे में नहीं है। वादीगण को अपने उपाय अन्यत्र तलाशने पड़ सकते हैं।

12. दिलचस्प बात यह है कि वर्तमान मामले में मध्यस्थ की नियुक्ति अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत किसी भी पक्षकारगण द्वारा दायर किसी भी आवेदन के आधार पर नहीं की गई थी। इसके बजाय, यह निर्विवाद स्थिति है कि वादीगण द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध पहले दायर किए गए वाद के लंबित रहने के दौरान, जिसमें प्रतिवादी ने अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत पक्षकारगण को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए आवेदन दायर किया था, यह वादीगण ही थे जिन्होंने लंबित विवादों के संबंध में पक्षकारगण को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का प्रस्ताव रखा था, जिसे प्रतिवादी की ओर से अगली तिथि अर्थात् दिनांक 13.10.2004 को स्वीकार कर लिया गया था और तदनुसार, अनुबंध के अनुसार नामनिर्दिष्ट मध्यस्थ को पक्षकारगण के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए नियुक्त करने का निर्देश दिया गया था।

13. उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को देखते हुए और एस.बी.पी. एंड कंपनी (पूर्वोक्त) और मोहन ट्रेडर्स (पूर्वोक्त) के मामले में निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी के अधिवक्ता का यह कहना उचित है कि चूँकि पक्षकारगण ने अपने

विवादों को मध्यस्थ अधिकरण में प्रस्तुत किया है, इसलिए समान विवादों को एक साथ सिविल वाद में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और अधिनियम की धारा 5 और सि.प्र.सं. की धारा 9 के अंतर्गत निर्धारित प्रतिबंध लागू होते हैं।

14. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 5 के उपबंधों और सि.प्र.सं की धारा 9 के उपबंधों में परिकल्पित वर्जन को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वर्तमान वाद सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 (घ) के उपबंधों के अंतर्गत अस्वीकार किए जाने योग्य है। परिणामस्वरूप, प्रतिवादी द्वारा दायर वर्तमान आवेदन को स्वीकार किया जाता है। इस आधार पर वादपत्र को अस्वीकार किया जाता है कि वाद का विषय पहले से ही मध्यस्थ अधिकरण के संदर्भ का विषय है, जो इस मामले पर अधिकार में है।

15. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपरोक्त निष्कर्ष केवल प्रतिवादी द्वारा दायर वर्तमान आवेदन पर निर्णय लेने के प्रयोजन से हैं, और उन्हें पक्षकारगण के बीच विवादों के गुणागुण पर टिप्पणी के रूप में नहीं माना जाएगा, जिनमें विद्वान मध्यस्थ द्वारा दिनांक 31.1.2006 के आदेश के अंतर्गत निर्णीत किए गए विवाद भी शामिल हैं।

न्या. हिमा कोहली

10 सितंबर, 2008

केए/एस/एसके

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।